अपराजितपृच्छा में चित्रित सामाजिक दशा

डॉ. जयनारायण पाण्डेय

जैन धर्म, भारत के धर्मों में से एक होते हुए भी, आज भी एक जीवन्त धर्म है। इस धर्म का भारत के राजनीतिक एवं सांस्कृतिक जीवन में एक अत्यन्त महत्त्वपूर्ण स्थान रहा है और अभी भी है। जैन आचार्यों एवं सूरियों ने जिस साहित्य की सर्जना की है; यद्यपि वह प्रधानरूपेण धार्मिक एवं दार्शनिक विषयों से सम्बद्ध है, लेकिन उसके सम्यक् अनुशीलन और परिशीलन से सामाजिक प्रवृत्तियों एवं संस्थाओं के बारे में भी समुचित प्रकाश पड़ता है। प्रस्तुत निबंध में **'अपराजितपृच्छा'** नामक ग्रंथ के आधार पर तत्कालीन सामाजिक-जीवन का चित्रण प्रस्तुत करने का एक विनम्र प्रयत्न कर रहा हूँ। भुवनदेवकृत **अपराजितपृच्छा** वास्तुशास्त्र का एक ग्रंथ है। इस ग्रंथ का रचना काल बारहवीं शताब्दी ई. से तेरहवीं शताब्दी ई. के पूर्वार्द्ध के मध्य माना गया है।[1] इस ग्रंथ में प्राप्य राजकीय उपाधियों के आधार पर यह संभावना की गई है कि इसकी रचना गुजरात अथवा राजस्थान के क्षेत्र में की गई होगी।[2] इसीलिए यह भी कहा गया है कि ग्रंथ मुख्यरूप से तत्कालीन पश्चिम भारत के जन-जीवन के बारे में ही प्रधानरूपेण प्रकाश डालता है। इस ग्रंथ का सम्यक् अनुशीलन होना अभी शेष है। यद्यपि विभिन्न विद्वानों ने अपने-अपने विशिष्ट अनुसंधानों के सन्दर्भ में तथा शोध-प्रबंधों में इसके कतिपय पक्षों का विश्लेषण किया है।

विवेच्य ग्रंथ के रचनाकाल तक भारत के राजनीतिक जीवन में सामन्त प्रथा का लगभग पूर्ण विकास हो चुका था। भारत के इतिहास में सामन्तवाद के बारे में सर्वप्रथम उल्लेखनीय कार्य करने का श्रेय प्रोफेसर रामशरण शर्मा को है, जिन्होंने चतुर्थ शताब्दी ई. से बारहवीं शताब्दी ई. के मध्य उत्तर भारत में सामन्त प्रथा का अत्यन्त विद्वत्तापूर्ण विश्लेषण अपने ग्रंथ **इन्डियन फ्यूडलिज्म** : ३००–१२०० ई. (कलकत्ता १९६५) में किया है। प्रोफेसर शर्मा की विचार पद्धति समकालीन रूसी विद्वान् एल. बी. ए. अलायेफ से बहुत कुछ मिलती-जुलती है। प्रोफेसर दीनेश चन्द्र

---

१. मांकड़, पी. ए. **अपराजितपृच्छा की भूमिका**, बड़ौदा (१९५०) : XI

२. अग्रवाल, वासुदेवशरण, "इन्ट्रोडक्शन टु अपराजितपृच्छा" **जर्नल ऑव यू.पी. हिस्टारिकल सोसाइटी**, वाल्यूम XXIV-XXV (1950-51) p. 290

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

सरकार की अध्यक्षता में लगभग इसी समय कलकत्ता विश्वविद्यालय के प्राचीन इतिहास विभाग के उच्च शोध संस्थान में 'प्राचीन भारत में सामन्तवाद' विषय पर एक गोष्ठी (सेमिनार) का आयोजन किया गया। इस गोष्ठी की कार्यवाही का प्रकाशन डा. दीनेश चन्द्र सरकार के सम्पादन में **लैण्ड सिस्टम एन्ड फ्यूडलिज्म इन एंश्येन्ट इंडिया** (कलकत्ता, १९६६) नाम से किया गया है। इस ग्रंथ के विद्वान् सम्पादक सरकार भारत में सामंतवाद का अस्तित्व नहीं मानते हैं।[3]

सामन्त-प्रणाली एवं जाति प्रथा—अपराजितपृच्छा में सामन्त प्रणाली के बारे में अपेक्षाकृत एक विस्तृत झलक देखने को मिलती है तथा इसका प्रभाव तत्कालीन वैचारिक जगत में अन्य क्षेत्रों में भी देखने को मिलता है। लेकिन **अपराजितपृच्छा** में प्राप्त साक्ष्यों के विवेचन के पूर्व 'सामन्त' शब्द के बारे में किंचित् विचार कर लेना अप्रासंगिक न होगा। कौटिल्य ने अपने **अर्थशास्त्र** में सामन्त शब्द का व्यवहार पड़ोसी राजा के अर्थ में किया है।[4] अशोक के कतिपय शिलाप्रज्ञापनों में भी इस शब्द का इसी उपर्युक्त अर्थ में प्रयोग किया गया है; उदाहरणार्थ कालसी (२·5), धौली (२·2) तथा जौगड़ा (२·2) शिलाप्रज्ञापनों में।[5] मनु एवं याज्ञवल्क्य की स्मृतियों में इस शब्द का प्रयोग एक भिन्न-अर्थ में किया गया है। यहाँ पर सामंत शब्द समीपस्थ भूस्वामी के अर्थ में आया है।[6] स्मृतियों के टीकाकारों ने भी सामंत शब्द का इसी अर्थ में प्रयोग किया है। अश्वघोष के बुद्धचरित में इस शब्द का सर्वप्रथम प्रयोग अधीनस्थ करद शासक के अर्थ में मिलता है। साहित्यिक एवं अभिलेखीय साक्ष्यों के समवेत प्रमाणों से यही प्रतीत होता है कि गुप्तकाल (२५० ई. से ५५० ई.) और उसके उपरान्त इस शब्द का प्रयोग अधीनस्थ शासक के अर्थ में होने लगता है कालान्तर में इस शब्द का व्यापक अर्थ में प्रयोग तो सामन्त के अर्थ में ही होता रहा लेकिन संकुचित और विशिष्ट परिप्रेक्ष्य में इस शब्द का प्रयोग सामन्तों के वर्ग विशेष के अर्थ में होने लगा था।[7]

---

३. सरकार डी. सी. **लैण्ड सिस्टम एन्ड फ्यूडलिज्म इन एन्श्येन्ट इंडिया** (कलकत्ता 1966) पृ. 57–62 एवं 124–126 वे सामंतवाद शब्द के स्थान पर जमींदारी (लैण्डलॉर्डिज्म) शब्द के प्रयोग के पक्ष में है।

४. कांगले, **कौटिल्यीय अर्थशास्त्र** ए स्टडी, (भाग III) बम्बई, 1965, पृ. 250.

५. पाण्डेय, राजबली, **अशोक के अभिलेख**।

६. शर्मा, रामशरण, पार्श्वोद्धरित, 1965 पृष्ठ 24।

७. अग्रवाल वासुदेवशरण, **हर्षचरित : एक सांस्कृतिक अध्ययन** (पटना, 1953) परिशिष्ट सं० २।

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

अपराजित पृच्छा में सामन्तों का वर्गीकरण इस प्रकार मिलता है[८]—

पद नाम	ग्रामसंख्या
१. महामंडलेश्वर	१,००,०००
२. माण्डलिक	५०,०००
३. महासामन्त	२०,०००
४. सामन्त	१०,०००
५. लघु सामन्त	५,०००
६. चतुरंशिक	१,०००

इसके पश्चात् ५०, ३०, ३, २ तथा एक ग्राम वाले सामन्तों का स्थान था। सरसरी तौर पर देखने से तो यह क्रम विभाजन एक सैद्धान्तिक विवेचन मात्र लगता है जिसकी वास्तविकता से कोई सरोकार नहीं था। लेकिन विचारणीय बात यह है कि **अपराजितपृच्छा** वास्तुशास्त्र से सम्बद्ध एक कृति है। उसमें वर्णित स्थिति यथार्थ के अत्यन्त निकट मानी जा सकती है।

सामन्तवादी प्रवृत्ति का परोक्ष रूप से प्रभाव सामाजिक जीवन पर भी परिलक्षित होता है। अश्वलक्षण शालानामाशीतितं सूत्र में (८० : ७–१३ श्लोक) अश्वों का वर्गीकरण चातुर्वर्ण्य व्यवस्था के आधार पर किया गया है।[९]

इस दृष्टि से यह वर्गीकरण अनोखा कहा जा सकता है, क्योंकि अन्यत्र मानवीय गुणों का आरोपण पशुओं पर नहीं किया गया है। प्रत्युत पशुओं के शारीरिक सौष्ठव का उपयोग मनुष्यों के शारीर-गठन के प्रसंग में अनेकशः हुआ है। अश्वों का वर्गीकरण विप्र, क्षत्रिय, वैश्य एवं शूद्र (विप्रक्षत्रियविट्शूद्राः) इन चार कोटियों में किया गया है।[१०] यह प्रश्न उठना स्वाभाविक है कि ऐसा क्यों किया गया है? अथवा क्या वर्ण व्यवस्था ने समाज के हर क्षेत्र को इतनी बुरी तरह से जकड़ लिया था कि भुवनदेव जैसे कृती एवं सूरि ने भी अनजाने ही इसी शब्दावली का प्रयोग किया है? क्या समाज के विचारवान् और चिंतनशील लोग वर्ण व्यवस्था के

---

८. यादव, बृजनाथ सिंह **सोसाइटी एन्ड कल्चर इन नादर्न इंडिया** (इलाहाबाद १९७३) पृ० १४९ एवं १५१।

९. मांकड़ पी० ए० पार्श्वोद्धरित (१९५०) पृ० २०१।

१०. अपराजितपृच्छा (सं. मांकड) (बड़ौदा १९५०) पृ० २०१ सूत्र ८०; श्लोक १४।

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

प्रति अपनी स्वीकृति का प्रकाशन कर रहे थे ? कारण जो भी रहे हों, इस साक्ष्य का किंचित् उल्लेख असंगत न होगा। विप्रजाति अश्व उसे कहा है जो अत्यन्त द्रुतगामी, स्वामी या सवार के सवारी करने पर प्रसन्न होने वाला तथा प्रज्ञाचक्षु हो।[११] क्षत्रिय संज्ञक अश्व को अत्यन्त संवेदनशील, सवार को पहचानने वाला तथा अन्य व्यक्ति को लंगी मार कर गिरा देने वाला, संग्रामदुर्भर तथा कामातुर एवं शूर कहा गया है।[१२] स्थिरासन, स्थिरकाय तथा मधुर शब्द करने वाले अश्व को वैश्य संज्ञा दी गई है।[१३] शूद्र संज्ञक अश्व को निकृष्ट कोटि का माना गया है। जो जलाशय में प्रवेश करने से डरता हो, कर्कश स्वर में हिनहिनताा हो, एवं क्षणातुर एवं क्षणभर में स्वस्थ होने वाला हो।[१४] इन चारों वर्गों में भिन्न गुणों अश्वों को प्रकृति जातक[१५] कहा गया है।

अपराजितपृच्छा में चित्रित सामाजिक स्थिति के विभिन्न पक्षों का अध्ययन गम्भीर अनुसन्धान की अपेक्षा रखता है। आशा करनी चाहिए कि भविष्य में विद्वान् अनुसन्धित्सुओं का ध्यान इस ओर अवश्य जायेगा।

प्राचीन इतिहास, संस्कृति एवं पुरातत्त्व विभाग,
इलाहाबाद विश्वविद्यालय,
इलाहाबाद, उत्तर प्रदेश

---

११. अपराजितपृच्छा—पार्श्वोद्धरित सूत्र ८०; श्लोक संख्या ४–६।
१२. अपराजितपृच्छा, सूत्र ८०; श्लोक ७–८, १३. वही, सूत्र ८०; श्लोक ९–११।
१४. वही, सूत्र ८०; श्लोक ११–१३, १५. वही, सूत्र ८०; श्लोक १३–१४।

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org